

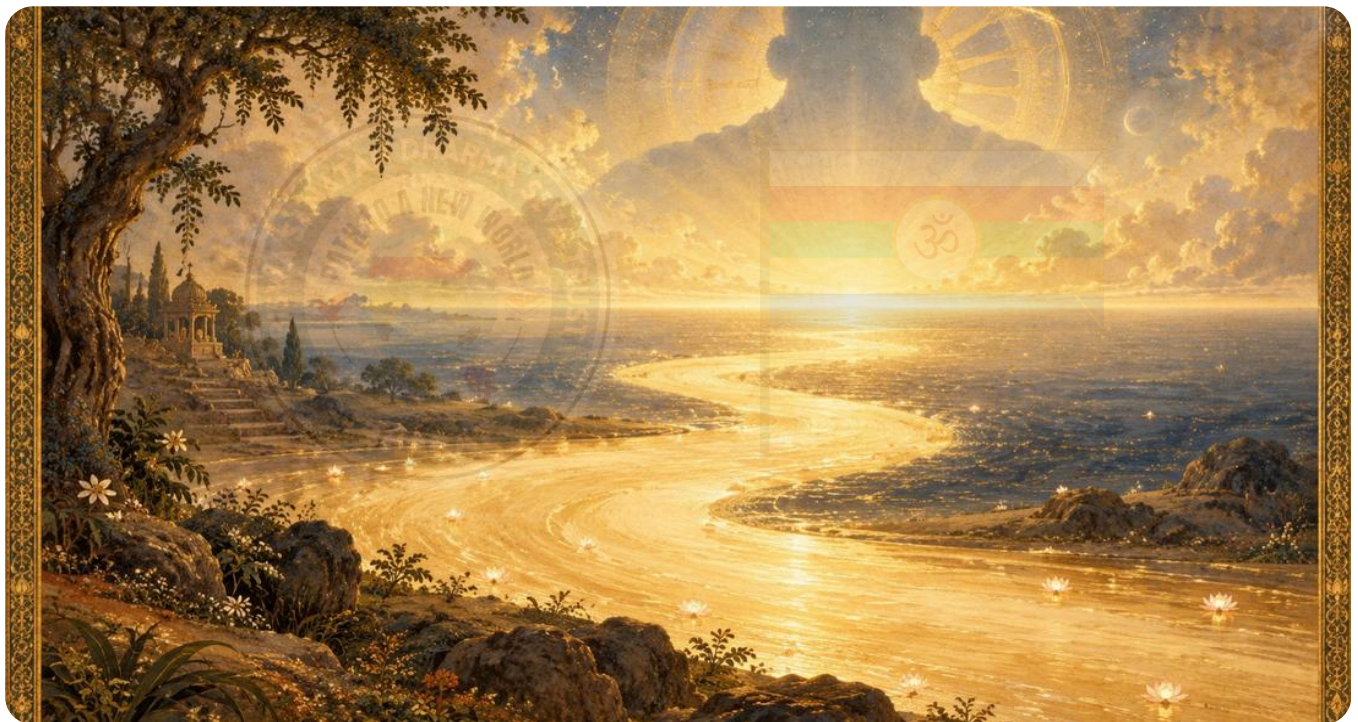
श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध अध्याय २९: भक्ति का अर्थ और काल की महिमा

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



भक्त के प्रेम की अविरल धारा भगवान की ओर वैसे ही प्रवाहित होती है जैसे गंगा का जल समुद्र की ओर बहता है — और उसी कोमल धारा से परे, वही भगवान सर्वग्रासी काल के रूप में प्रकट होते हैं, जिनके भय से वायु बहती है, सूर्य चमकता है, और स्वयं मृत्यु को भी एक दिन मरना पड़ता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विजडम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमय यात्रा है। अट्ठाईसवाँ अध्याय भगवान कपिल द्वारा अष्टांग योग-मार्ग के वर्णन के साथ समाप्त हुआ था, जो साधक के मन की विलीनता और सर्वव्यापी आत्मा की अनुभूति में परिणत होता है। देवहूति, इस शिक्षा को आत्मसात् करने के बाद, अब अपने पुत्र की शिक्षा को एक नई — और अधिकांश पाठकों के लिए अधिक व्यावहारिक — दिशा में मोड़ती हैं: वे उनसे भक्ति को स्वयं समझाने का अनुरोध करती हैं, न कि एक अस्पष्ट भावना के रूप में, बल्कि उसके वास्तविक, भिन्न-भिन्न लक्षणों सहित — और उसी सांस में, काल की प्रकृति को भी समझाने का, जिसके समक्ष स्वयं ब्रह्मा भी विस्मित खड़े होते हैं। उनतीसवाँ अध्याय इन दोनों प्रश्नों का कपिल का उत्तर है, और यह दो स्पष्ट आयामों में प्रकट होता है। पहले भक्ति का सूक्ष्म, लगभग वैज्ञानिक विश्लेषण आता है: प्रकृति के गुणों द्वारा रंगी हुई पूजा की तीन निम्न श्रेणियाँ, एक अखंड, निर्गुण भक्ति की परिभाषा जो इन सबसे परे है, साधारण पूजा को शुद्ध करने वाले साधनों की एक विस्तृत सूची, और यह कठोर चेतावनी कि कोई भी मूर्ति-पूजा, चाहे कितनी ही भव्य क्यों न हो, भगवान को प्रसन्न नहीं करती यदि उसके साथ उन जीवों के प्रति तिरस्कार हो जिनमें वे समान रूप से निवास करते हैं। फिर, बिना किसी संक्रमण के, कपिल अपनी माता के प्रश्न के दूसरे भाग की ओर मुड़ते हैं और प्रकट करते हैं कि जिस भगवान को प्रेम करना वे सीख रही हैं, वही काल भी हैं — स्वयं समय — वह अदृश्य शासक जिसके भय से वायु बहती है, सूर्य चमकता है, नदियाँ बहती हैं, और स्वयं मृत्यु के देवता को भी एक दिन निगल लिया जाएगा। अंततः यह एक ऐसा अध्याय है जो प्रेम और विस्मय को उसी परम पुरुष के दो मुखों के रूप में दर्शाता है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: ३ (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: २९ (प्रवचन २९)
- अध्याय शीर्षक: भक्ति का वास्तविक अर्थ और काल की महिमा
- मुख्य वक्ता: भगवान कपिल, सीधे देवहूति को सम्बोधित करते हुए (मैत्रेय द्वारा विदुर को कथा-वर्णन के बाहरी ढाँचे के भीतर)
- मुख्य श्रोता: देवहूति, जो अध्याय के आरम्भ में ही प्रश्नों की एक शृंखला पूछती हैं (श्लोक १-५)
- मुख्य स्थान: कर्दम का आश्रम, अध्याय २४ में आरम्भ हुई शिक्षा की निरंतरता में
- केंद्रीय विषय: गुणों के अनुसार भक्तों का त्रिविध वर्गीकरण, निर्गुण भक्तियोग की परिभाषा, भक्ति के व्यावहारिक साधन, सभी प्राणियों में भगवान की समान उपस्थिति देखने की आवश्यकता, और — अध्याय के दूसरे भाग में — काल की महिमा, जो भगवान का ही एक अभिन्न रूप है
- मुख्य श्लोक सीमा: तृतीय स्कन्ध, अध्याय २९, श्लोक १-४५
- प्राथमिक संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण
- महत्वपूर्ण स्रोत टिप्पणी: प्राथमिक-स्रोत पीडीएफ का पृष्ठ २७० भौतिक रूप से स्कैन में अनुपस्थित है, जो श्लोक २८-३४ को प्रभावित करता है। नीचे यह अंतराल एक स्वतंत्र-शब्दों में लिखे सारांश से पाटा गया है, जिसे एक अन्य प्रकाशित संस्करण के विरुद्ध श्लोकवार जाँचा गया है; पूर्ण विवरण हेतु नीचे सत्यापन एवं विसंगति टिप्पणियाँ देखें।

देवहूति के चार प्रश्न

अध्याय का आरम्भ कपिल से नहीं बल्कि देवहूति से होता है, जिनकी जिज्ञासा — अपने पुत्र की शिक्षा के अध्याय-दर-अध्याय द्वारा जागृत होकर — अब उन सबसे व्यावहारिक और सबसे भयावह विषयों की ओर पहुँचती है जो अब तक अनुत्तरित रहे हैं।

देवहूति ने कहा: “आपने मुझे सांख्य दर्शन के ग्रंथों में वर्णित महत्तत्त्व, प्रकृति और पुरुष के लक्षण बताए हैं — ऐसे लक्षण जो उनकी वास्तविक, विशिष्ट प्रकृति को प्रकट करते हैं; अब कृपा कर मुझे विस्तार से भक्तियोग का मार्ग बताइए, हे प्रभु, जो इस समस्त चर्चा का चरम लक्ष्य कहा जाता है।” (श्लोक १-२) “कृपया मुझे जीवों द्वारा प्राप्त विभिन्न गतियाँ भी बताइए, जिन्हें सुनकर मनुष्य इस लोक तथा परलोक — दोनों के प्रति अरुचि विकसित कर सके, हे सर्वशक्तिमान प्रभु!” (श्लोक ३) “आगे मुझे सर्वशक्तिमान काल की सारभूत प्रकृति बताइए, जो स्वयं ब्रह्मा आदि के भी शासक हैं और आपसे अभिन्न हैं, और जिनके भय से लोग सत्कर्म करते हैं।” (श्लोक ४) “आप एक सूर्य के समान प्रकट हुए हैं, उन मनुष्यों को जगाने हेतु योग का प्रकाश फैलाने के लिए, जिन्होंने ज्ञान की दृष्टि खोकर अवास्तविक वस्तुओं — जैसे शरीर — के साथ अपने को तादात्म्य कर लिया है, और जो कर्म में आसक्त मन के कारण थककर अज्ञान के अतल अंधकार में दीर्घकाल से सोए पड़े हैं।” (श्लोक ५)

इससे पहले कि हम कपिल के उत्तर की ओर बढ़ें, इन चार प्रश्नों की बनावट पर रुककर विचार करना उचित होगा। देवहूति सांत्वना नहीं माँगती; वे स्पष्टता माँगती हैं। उन्हें पहले ही इससे पूर्व के अध्यायों में सृष्टि-विज्ञान का मानचित्र दिया जा चुका है — अब वे वह दिशासूचक चाहती हैं जो उन्हें वास्तव में कहीं पहुँचाए, और वे उस विषय को भी समझना चाहती हैं जिसे अधिकांश लोग सोचने से बचने में अपना जीवन बिता देते हैं: वह काल, जो सृष्टि के शासकों का भी शासक है। मैत्रेय, विदुर को यह संवाद सुनाते हुए, स्पष्ट कोमलता के साथ बताते हैं कि कपिल इसे कैसे ग्रहण करते हैं:

मैत्रेय ने आगे कहा: “उस महान ऋषि ने अपनी माता के इन मनोहर वचनों का स्वागत किया, और करुणा से अभिभूत तथा प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर, हे कुरुश्रेष्ठ, उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।” (श्लोक ६)



देवहूति अपने दिव्य पुत्र से एक साथ चार प्रश्न पूछती हैं — भक्ति का मार्ग, जीवों की गतियाँ, सर्वशक्तिमान काल की प्रकृति, और अज्ञान में सोए जीवों का जागरण — और कपिल, “करुणा से अभिभूत तथा प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर,” तुरंत उन्हें उत्तर देने की ओर मुड़ते हैं (श्लोक १-६)।

भक्तों के तीन श्रेणियाँ

कपिल का उत्तर वहीं से आरम्भ होता है जहाँ से भक्ति पर किसी भी ईमानदार शिक्षा को आरम्भ होना चाहिए — आदर्श से नहीं, बल्कि उन साधारण, मिश्रित उद्देश्यों से जो वास्तव में अधिकांश लोगों को पहली बार पूजा की ओर लाते हैं।

भगवान ने कहा: “भक्ति की साधना, हे साध्वी, हमारे उसके प्रति दृष्टिकोण के अनुसार बहुविध मानी जाती है; और मनुष्यों का मनोभाव उनके स्वाभाविक गुणों की विविधता के अनुसार भिन्न होता है।” (श्लोक ७)

इसके बाद तीन प्रकार आते हैं, प्रत्येक प्रकृति के तीन गुणों से जुड़ा हुआ, जिन्हें इसी स्कन्ध ने कई अध्यायों में विस्तार से समझाया है।

जो मनुष्य क्रोध से आसक्त है और भगवान को स्वयं से भिन्न मानता है, और जो हिंसा, पाखंड तथा ईर्ष्या से युक्त मन के साथ भक्ति करता है, वह तामसिक प्रकार का भक्त है। (श्लोक ८) जो किसी मूर्ति आदि के माध्यम से, स्वयं से भिन्न मानते हुए, इन्द्रिय-सुख, यश या शक्ति प्राप्त करने की दृष्टि से पूजा करता है, वह राजसिक प्रकार का भक्त है। (श्लोक ९) और जो भगवान को स्वयं से भिन्न मानते हुए, अपने पापों के निवारण के उद्देश्य से, या अपने कर्मों को परमात्मा को अर्पित करने के आशय से, या फिर पूजा को अपना कर्तव्य समझकर अराधना करता है, वह सात्त्विक प्रकार का भक्त है। (श्लोक १०)

कपिल स्पष्ट करते हैं कि इन तीनों में से कोई भी अंतिम लक्ष्य नहीं है — प्रत्येक अब भी किसी न किसी गुण से रंगा हुआ है, और भक्त के अपने ही लाभ के इर्द-गिर्द केंद्रित है, चाहे सात्त्विक अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वह लाभ कितना ही परिष्कृत क्यों न हो गया हो। वास्तविक लक्ष्य इन तीनों से परे स्थित है:

मन की अविच्छिन्न धारा का भगवान की ओर प्रवाहित होना — जो समस्त प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं — जैसे गंगा का जल समुद्र की ओर बहता है, उनके गुणों के मात्र उल्लेख से, तथा निष्काम एवं अविरत प्रेम के साथ मिलकर, यही निर्गुण भक्तियोग का विशिष्ट लक्षण कहा गया है। (श्लोक ११-१२)

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये । मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ ११ ॥ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् । अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥

mad-guṇa-śruti-mātreṇa mayi sarva-guhāśaye mano-gatir avicchinnā yathā gaṅgāmbhaso 'mbudhau lakṣaṇaṁ bhakti-yogasya nirguṇasya hy udāhṛtam ahaituky avyavahitā yā bhaktiḥ puruṣottame

अर्थ: जिस क्षण मन भगवान के अपने गुणों को सुनता है और समस्त हृदयों की गुफा में विराजमान उन्हीं की ओर मुड़ता है, उसकी धारा गंगा के समुद्र की ओर बहने जितनी ही स्थिर तथा अबाध हो जाती है — बदले में कुछ भी न चाहने वाली यह स्वयं-पोषित धारा ही तीनों गुणों से परे भक्तियोग की पहचान है। (तृतीय स्कन्ध, अध्याय २९, श्लोक ११-१२)

भगवान के भक्त उनकी सेवा के बदले, अंतिम मुक्ति के पाँचों रूपों में से किसी को भी स्वीकार नहीं करते — सालोक्य (उनके दिव्य धाम में निवास), सार्ष्टि (उनकी शक्तियों का उपभोग), सामीप्य (उनके सान्निध्य में निवास), सारूप्य (उनके समान रूप की प्राप्ति), और सायुज्य (उनके स्वरूप में लीन होना) — भले ही ये उन्हें (भगवान द्वारा) प्रदान किए जाएँ। (श्लोक १३) उपर्युक्त भक्तियोग को सर्वोच्च तथा अंतिम लक्ष्य घोषित किया गया है; क्योंकि प्रकृति के तीन गुणों के क्षेत्र को लांघकर भक्त बिना किसी विशेष प्रयास के भगवान की अवस्था के लिए योग्य हो जाता है। (श्लोक १४)

यह इस पूरे अध्याय के सबसे शांत किन्तु सबसे क्रांतिकारी दावों में से एक है: निर्गुण भक्तियोग का अभ्यास करने वाला भक्त स्वयं मुक्ति को भी अस्वीकार कर देगा, भले ही वह भगवान द्वारा स्वयं प्रदान की जाए, यदि वह निरंतर प्रेममयी सेवा के स्थान पर दी जाए। गंगा का यह उपमा सोच-समझकर चुना गया है — नदी यह विचार नहीं करती कि उसे समुद्र की ओर बहना है या नहीं; वह बस अपने स्वभाव से खिंचकर, बिना किसी गणना के, प्रवाहित होती रहती है। यही, कपिल कहते हैं, वास्तविक भक्ति का भीतरी स्वरूप है।



कपिल तामसिक भक्त के क्रोध, राजसिक भक्त की यश तथा शक्ति की लालसा, और सात्त्विक भक्त की कर्तव्य-भावना को — ये तीनों गुणों से रंगी पूजाएँ हैं — उस एकल निर्गुण भक्तियोग से भिन्न बताते हैं, जो भगवान की ओर उतनी ही अबाध और स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती है जितनी गंगा समुद्र की ओर बहती है (श्लोक ७-१४)।

भक्तिमय जीवन के व्यावहारिक साधन

लक्ष्य को तीनों प्रारंभिक अवस्थाओं से अलग करने के बाद, कपिल अब अत्यंत ठोस रूप से यह बताते हैं कि एक सामान्य साधक वहाँ वास्तव में कैसे पहुँचता है — किसी एक नाटकीय छलांग से नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक सम्पूर्ण शैली के माध्यम से।

अपने कर्तव्यों — दोनों नित्य कर्तव्यों तथा विशेष अवसरों पर उत्पन्न होने वाले कर्तव्यों — को निष्काम भाव से भक्तिपूर्वक करके; पंचरात्र तथा अन्य पवित्र ग्रंथों द्वारा विहित पूजा-विधि का प्रतिदिन पालन करके, जिसमें किसी जीव की हिंसा न हो और जो किसी सांसारिक इच्छा से प्रेरित न हो; भगवान की मूर्तियों को देखकर, स्पर्श करके, पूजकर, स्तुति करके और नमन करके, तथा समस्त जीवों को उनकी ही अभिव्यक्ति मानकर; धैर्य तथा वैराग्य का आश्रय लेकर; महान आत्माओं का आदर, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, और समानों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करके; पाँच यमों — अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, तथा आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना — तथा पाँच नियमों — बाह्य एवं आंतरिक शुद्धि, संतोष, तपस्या, शास्त्राध्ययन, तथा ईश्वर-ध्यान — का पालन करके; आध्यात्मिक प्रवचन सुनकर तथा दिव्य नामों का जप करके; और मन, वाणी तथा शरीर की एकता, साधु-संगति, तथा अहंकार-रहितता द्वारा — भगवान को प्रसन्न करने वाले कार्यों में संलग्न मनुष्य का मन पूर्णतः शुद्ध हो जाता है, और जिस क्षण भगवान के गुण उसके कानों में प्रवेश करते हैं, उसी क्षण बिना किसी विशेष प्रयास के उसमें उनके प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। (श्लोक १५-१९)

यह अंश ठहरकर मनन करने योग्य है, क्योंकि इसमें कुछ भी असाधारण या केवल संन्यासियों तक सीमित नहीं है। बिना आसक्ति के कर्तव्य-पालन; किसी को हानि न पहुँचाने वाली पूजा; समानों के प्रति मैत्री; सरल नैतिक संयम; नियमित अध्ययन और शांत ध्यान — कपिल यहाँ दैनिक जीवन की एक बुनावट का वर्णन कर रहे हैं, न कि केवल विशेष रूप से योग्य लोगों के लिए उपलब्ध कोई तकनीक। और इसके साथ जुड़ा वादा भी उतना ही स्पष्ट है: यह जीवन-शैली भक्ति को बलपूर्वक उत्पन्न नहीं करती। यह केवल बाधाओं को हटा देती है, ताकि भगवान के प्रति अनुराग वैसे ही “कानों में प्रवेश करे” जैसे ध्वनि बिना किसी अवरोध के कान में प्रवेश करती है।

कपिला तुरंत इस बात को साधारण इन्द्रिय-अनुभव से लिए गए एक उपमा से पुष्ट करते हैं:

जैसे वायु के रथ पर सवार होकर उसके स्रोत से आई गंध घ्राण-इन्द्रिय को पकड़ लेती है, वैसे ही योग में रत, समत्व को प्राप्त मन उस अविकारी भगवान को ग्रहण कर लेता है। (श्लोक २०)

समान दृष्टि: चयनात्मक पूजा के विरुद्ध चेतावनी

भक्ति को शुद्ध करने वाली बातों का वर्णन करने के बाद, कपिल अब उस ओर मुड़ते हैं जो उन्नत अवस्था में भी भक्ति को दूषित कर सकता है — और यहाँ अध्याय अपनी सबसे तीखी और सबसे असुविधाजनक शिक्षाओं में से एक देता है।

“मैं सदैव समस्त जीवों में उनकी अपनी आत्मा — उनके अन्तर्यामी — के रूप में उपस्थित हूँ। जो मनुष्य मूर्ति के माध्यम से मेरी पूजा करते हुए, समस्त प्राणियों में निवास करने वाले मेरा अनादर करता है, वह पूजा का उपहास करता है।” (श्लोक २१) “मुझ परम शासक की, जो समस्त जीवों में विद्यमान आत्मा हूँ, उपेक्षा करके जो मूर्खतापूर्वक केवल मूर्ति-पूजा का आश्रय लेता है, वह भस्म में आहुति डालता है।” (श्लोक २२) “जो मनुष्य अहंकार से युक्त होकर, किसी अन्य के शरीर में निवास करने वाले मुझसे द्वेष करता है, मुझे स्वयं से भिन्न मानता है, और जीवों के प्रति गहरी द्वेष-भावना रखता है, उसका मन कभी शांति नहीं पा सकता।” (श्लोक २३) “मैं प्रसन्न नहीं होता, चाहे कोई मूर्ति के माध्यम से महंगी या सस्ती सामग्री से औपचारिक पूजा करे, हे निष्पाप माता, यदि वह अन्य जीवों का तिरस्कार करता है।” (श्लोक २४) “अपने विहित कर्तव्यों का पालन करते हुए, मनुष्य को मुझ परम शासक की मूर्ति आदि के माध्यम से तभी तक पूजा करनी चाहिए जब तक वह मुझे अपने ही हृदय में तथा अन्य जीवों के हृदय में उपस्थित अनुभव नहीं कर लेता।” (श्लोक २५) “मृत्यु के रूप में प्रकट होकर, मैं उस मनुष्य को गहन भय उत्पन्न करता हूँ जो अपने भेदमूलक दृष्टिकोण के कारण स्वयं और अन्य में तनिक भी भेद करता है।” (श्लोक २६) “इसलिए, दान तथा सम्मान के द्वारा, साथ ही मैत्रीपूर्ण व्यवहार तथा सबको समान देखकर, समस्त प्राणियों में उनकी अपनी आत्मा के रूप में निवास करने वाले मुझे प्रसन्न करना चाहिए।” (श्लोक २७)

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् । हित्वा र्चा भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥ २२ ॥

yo mām sarveṣu bhūteṣu santam ātmānam īśvaram hitvārcām bhajate mauḍhyād bhasmany eva juhoti saḥ

अर्थ: जो व्यक्ति समस्त प्राणियों में समान रूप से विराजमान मुझ आत्मा से मुँह मोड़कर, उस जीवंत उपस्थिति की उपेक्षा करते हुए केवल मंदिर की मूर्ति की पूजा करता है, वह अपनी भेंट कहीं भी नहीं पहुँचाता — जैसे घी अग्नि में नहीं, बल्कि ठंडी राख में डाल दिया गया हो। (तृतीय स्कन्ध, अध्याय २९, श्लोक २२)

शास्त्रों में इससे अधिक स्पष्ट कथन मिलना कठिन होगा कि नैतिक दृष्टि के बिना अनुष्ठानिक शुद्धता केवल अपूर्ण भक्ति ही नहीं, बल्कि, कपिल के अपने कठोर शब्दों में, “भस्म में आहुति डालना” है। मंदिर की मूर्ति, नित्य आरती, “महंगी या सस्ती सामग्री” से की गई सावधानीपूर्ण पूजा — इनमें से कुछ भी उन लोगों में अन्तर्यामी के रूप में विराजमान उसी भगवान को पहचानने का विकल्प नहीं बन सकता, जिन्हें अन्यथा कोई अनदेखा, तिरस्कृत, या तुच्छ समझ सकता है। और श्लोक २५ में विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है: मूर्ति के माध्यम से मंदिर-पूजा को स्पष्ट रूप से स्वीकृत तथा प्रोत्साहित किया गया है — किन्तु एक चरण के रूप में, एक सीढ़ी के रूप में, जिसे “तभी तक” उपयोग करना है जब तक गहरी अनुभूति नहीं हो जाती। मूर्ति एक साधन है, कभी भी उस वास्तविकता का विकल्प नहीं जिसकी ओर वह संकेत करती है।

यहाँ अनुष्ठानिक शुद्धता व्यर्थ क्यों ठहरती है? क्योंकि मंदिर में विराजमान अन्तर्यामी तथा जिस व्यक्ति से हमें द्वेष है उसके हृदय में विराजमान अन्तर्यामी — ये दो भिन्न सत्ताएँ नहीं जो केवल एक-दूसरे से मिलती-जुलती हों; ये एक ही अखंड आत्मा हैं, जो दोनों स्थानों में पूर्णतः एक साथ उपस्थित है। आहुति को ऊपर ले जाने के लिए जीवंत अग्नि आवश्यक है; वही घी तथा मंत्र ठंडी राख पर डाले जाएँ तो, चाहे अनुष्ठान कितना ही यथावत क्यों न किया गया हो, वे कहीं नहीं पहुँचते। ठीक इसी प्रकार, किसी जीवित प्राणी से रोकी गई ऊष्मा हमारे मंदिर-पूजन के साथ खड़ी कोई अलग चूक नहीं है — वह स्वयं वही अग्नि है जिसकी पूजा को आवश्यकता थी, जो ठीक उसी क्षण अनुपस्थित रह गई जब उसकी आवश्यकता थी। इसीलिए कपिल चयनात्मक भक्ति को न्यून भेंट नहीं, बल्कि भेंट का पूर्ण अभाव कहते हैं (श्लोक २१-२४)।



अहंकार अथवा अन्य जीवों के प्रति तिरस्कार के साथ की गई औपचारिक पूजा, कपिल चेतावनी देते हैं, वास्तव में कोई पूजा ही नहीं है — क्योंकि जिस भगवान का मंदिर की मूर्ति में सम्मान किया जाता है, वही अन्तर्यामी के रूप में प्रत्येक जीव में भी अनिवार्यतः उपस्थित हैं, और वास्तविक भक्ति अंततः इसी में सिद्ध होती है कि उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है (श्लोक २१-२७)।

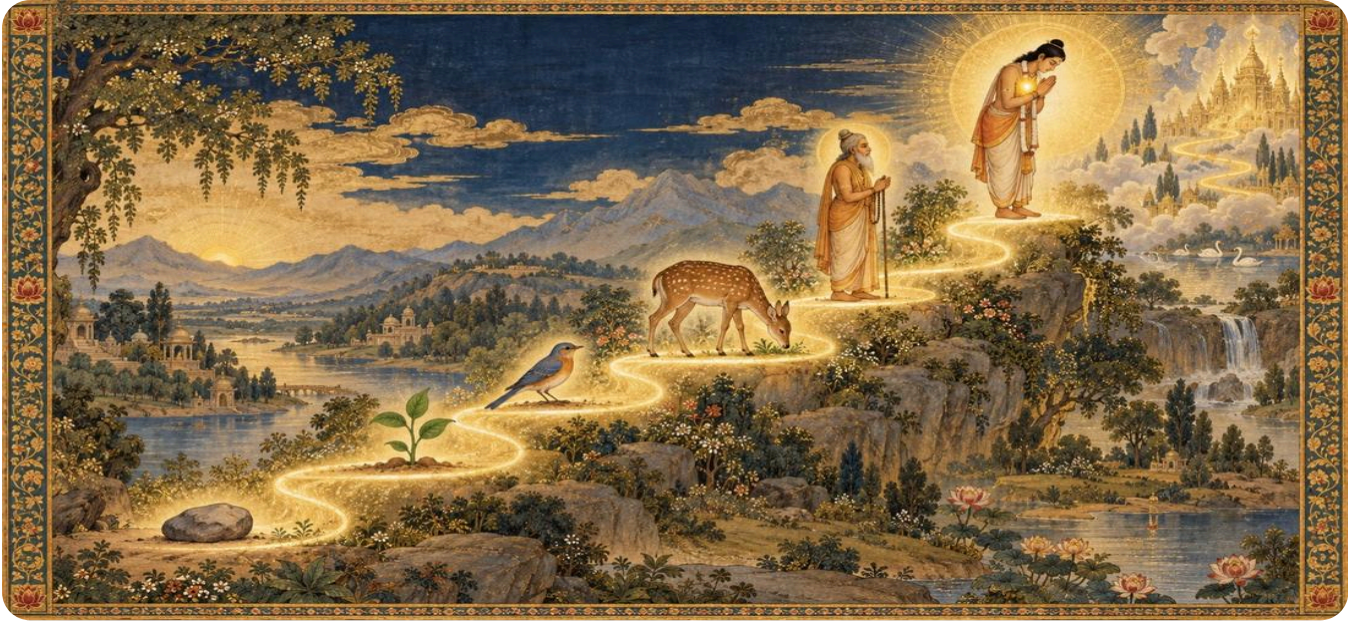
जीवन का सोपान और सिद्ध भक्त

अध्याय के इस बिंदु पर, गीता प्रेस के प्राथमिक-स्रोत पाठ में एक पुष्ट अंतराल है: पुस्तक का पृष्ठ २७० स्कैन की गई पीडीएफ से अनुपस्थित है, जो श्लोक २८ से ३४ तक को प्रभावित करता है। (पूर्ण तकनीकी विवरण नीचे सत्यापन एवं विसंगति टिप्पणियों में दिया गया है।) अध्याय के कवरेज को पूर्ण रखने हेतु, निम्नलिखित अनुच्छेद इन सात श्लोकों का एक स्वतंत्र-शब्दों में लिखा गया सारांश है, जिसे एक अन्य प्रकाशित

संस्करण के संस्कृत तथा श्लोक-क्रमांक SB ३.२९.२८-३४ के विरुद्ध सीधे जाँचा गया है — यह किसी अन्य अनुवाद की प्रतिलिपि नहीं है, और इसे यहाँ स्पष्ट रूप से प्राथमिक स्रोत में एक वास्तविक अंतराल को पाटने वाले के रूप में चिह्नित किया गया है, न कि गीता प्रेस से सीधे उद्धरण के रूप में।

श्लोक २७ में दिए गए “सबको समान देखने” के निर्देश की स्वाभाविक निरंतरता में, कपिल जीवन का एक क्रमबद्ध सोपान प्रस्तुत करते हैं, जिसका उद्देश्य उस समान दृष्टि का गहरा करना है — उसका खंडन करना नहीं। जीव, वे बताते हैं, निर्जीव पदार्थ से श्रेष्ठ हैं; जीवों में भी, जिनमें जीवन के दृश्य लक्षण हैं वे उनसे श्रेष्ठ हैं जिनमें नहीं हैं; इससे भी ऊँचे वे प्राणी हैं जिनमें विकसित चेतना है, और उनसे भी ऊँचे वे जिनमें विकसित इन्द्रिय-बोध है। (श्लोक २८) इन्द्रिय-बोध युक्त प्राणियों में, यह क्रम स्पर्श से स्वाद तक, स्वाद से गंध तक, और गंध से श्रवण तक ऊपर उठता है, प्रत्येक चरण अधिक पूर्ण क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है। (श्लोक २९) इनसे ऊपर वे प्राणी आते हैं जो दृष्टि से रूप को पहचान सकते हैं, फिर वे जिनके दोनों जबड़ों में दाँत हैं, फिर क्रमशः बहुपाद जीव, चतुष्पाद जीव, और अंततः द्विपाद मनुष्य। (श्लोक ३०) मनुष्यों में, गुण तथा कर्म के अनुसार संगठित समाज सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, और उसमें ब्राह्मण सर्वोपरि है; ब्राह्मणों में, वेदों का ज्ञाता श्रेष्ठ है, और उससे भी श्रेष्ठ वह है जिसने वेदों के केवल शब्दों को नहीं बल्कि उनके वास्तविक तात्पर्य को समझा है। (श्लोक ३१) ऐसे ज्ञाता से ऊपर वह है जो समस्त संदेहों का निवारण कर सकता है; उससे ऊपर वह जो अपने विहित कर्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करता है; उससे ऊपर वह जो सांसारिक आसक्ति से पूर्णतः मुक्त है; और सम्पूर्ण सोपान के शिखर पर, वह शुद्ध, निष्काम भक्त, जिसकी एकमात्र रुचि भगवान की अपनी रुचि है। (श्लोक ३२) कपिल घोषणा करते हैं कि वे स्वयं ऐसे भक्त से बढ़कर किसी को नहीं मानते — जो अपने प्रत्येक कर्म, समस्त संपत्ति, तथा स्वयं अपना जीवन बिना किसी विराम के उन्हें अर्पित करता है, और जो, कर्तृत्व के भाव को त्यागकर, वास्तव में समान दृष्टि रखता है और अब किसी भी प्राणी को भगवान से भिन्न नहीं देखता। (श्लोक ३३) ऐसा भक्त, यह समझते हुए कि परम पुरुष स्वयं अपने आंशिक विस्तार, अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में प्रत्येक जीव में प्रविष्ट हुए हैं, अपने मन में समस्त प्राणियों को सच्ची श्रद्धा के साथ नमन करता है। (श्लोक ३४)

इस दृष्टि से देखा जाए तो यह “सोपान” यह निर्धारित नहीं करता कि कौन अधिक या कम सम्मान का पात्र है — ऐसा अर्थ तो ठीक उससे पूर्व दी गई समान-दृष्टि की शिक्षा का सीधा खंडन होता। यह वास्तव में क्षमता का एक क्रम है: कि जीवन का कोई भी रूप भगवान की अपनी प्रकृति को कितनी सचेत रूप से पहचानने तथा उसे लौटाने में समर्थ है। और इसका तर्क सबसे शक्तिशाली अथवा सबसे विद्वान प्राणी में नहीं, बल्कि उस भक्त में परिणत होता है जिसने हिसाब रखना ही छोड़ दिया है — जो, ठीक इसलिए कि वह किसी भी प्राणी को भगवान से भिन्न नहीं देखता, अंततः अपने मन में उन सभी को नमन करता है।



निर्जीव पदार्थ से लेकर वनस्पतियों, बढ़ती इन्द्रिय-क्षमता वाले प्राणियों, तथा मानव समाज तक, कपिल का जीवन का क्रमबद्ध सोपान शक्ति या विद्या में नहीं, बल्कि उस शुद्ध भक्त में परिणत होता है, जो — अपने प्रत्येक कर्म को भगवान को अर्पित करके — अपने मन में समस्त प्राणियों को नमन करता है, प्रत्येक में उसी अन्तर्यामी को पहचानते हुए (श्लोक २८-३४)।

भक्ति-शिक्षा का समापन

सोपान पूर्ण होने के बाद, कपिल भक्ति के मार्ग को पूर्ववर्ती अध्यायों में विस्तार से चर्चित अष्टांग योग से स्पष्ट रूप से जोड़कर अध्याय के प्रथम अर्ध को समाप्त करते हैं।

“भक्तियोग तथा अष्टांग योग, दोनों ही मेरे द्वारा इस प्रकार वर्णित किए गए हैं, हे स्वायम्भुव मनु की पुत्री! इन दोनों में से किसी एक का अनुसरण करके मनुष्य परम पुरुष को प्राप्त कर सकता है।” (श्लोक ३५)

ये दोनों मार्ग — भक्तिमय तथा ध्यानपरक — प्रतिद्वंद्वी के रूप में नहीं, बल्कि उसी शिखर तक पहुँचने वाले दो पथों के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इसे स्थापित करने के बाद, कपिल अब बिना किसी और भूमिका के, अपनी माता के मूल प्रश्नों में से दूसरे की ओर मुड़ते हैं।

काल की महिमा

अध्याय का अंतिम आयाम देवहूति के चौथे प्रश्न — “सर्वशक्तिमान काल की सारभूत प्रकृति” के विषय में — का उत्तर देता है, और यह इस बात को प्रकट करके करता है कि काल कोई पृथक् ब्रह्मांडीय यंत्र नहीं है, बल्कि उसी भगवान का एक और नाम तथा एक और रूप है जिनकी भक्ति का वर्णन अभी-अभी किया गया है।

भगवान का यह उपर्युक्त पक्ष — जो वेदान्ती के अद्वैत तथा योगी के परम आत्मा के समान है, जो प्रकृति तथा पुरुष दोनों के रूप में प्रकट होता है फिर भी दोनों से परे है — विधाता के नाम से भी जाना जाता है, जो कर्म की गतिविधि को, अर्थात् विभिन्न जीवों के विभिन्न योनियों में जन्म रूपी नियति को, संचालित करता है। (श्लोक ३६) यह काल (समय) की उपाधि भी धारण करता है, जो वस्तुओं के रूपांतरण को उत्पन्न करता है तथा आश्चर्यजनक पराक्रम से युक्त है — उन लोगों के लिए निरंतर भय का स्रोत जो स्वयं को एक पृथक् सत्ता मानते हैं और जिन्होंने महत्तत्त्व तथा पदार्थ की अन्य उत्पत्तियों के साथ स्वयं का तादात्म्य कर लिया है। (श्लोक ३७) काल, शासकों के भी शासक — ब्रह्मा आदि — जो,

समस्त का आधार होकर, समस्त जीवों के हृदय में अन्तर्यामी के रूप में प्रवेश करते हैं तथा अन्य प्राणियों के माध्यम से उन्हें निगल जाते हैं (नष्ट करते हैं), वे यज्ञों के अधिष्ठाता देवता, विष्णु नाम से जाने जाने वाले, से अन्य कोई नहीं हैं। (श्लोक ३८) यद्यपि उनका कोई प्रिय या अप्रिय, अथवा कोई सम्बन्धी नहीं है, वे सदैव सतर्क रहते हैं, और उस मनुष्य पर आक्रमण करके उसे नष्ट कर देते हैं जो भगवान को भुलाकर इन्द्रिय-भोग की भूल में लिप्त रहता है। (श्लोक ३९)

इसके बाद एक विस्तृत, लगभग सांस रोक देने वाली सूची आती है, जिसमें सम्पूर्ण दृश्य ब्रह्मांड काल के भय से कार्य करता हुआ दिखाई देता है — दोषी का चिंतित भय नहीं, बल्कि वह श्रद्धामय भय जो सृष्टि के प्रत्येक तत्व को अपने कर्तव्य पर निष्ठापूर्वक बनाए रखता है:

उनके भय से वायु बहती है; उनके भय से सूर्य चमकता है; उनके भय से वर्षा का देवता वर्षा करता है, और उनके भय से आकाशीय पिंडों का समूह अपनी दीप्ति बिखेरता है। (श्लोक ४०) उनसे भयभीत होकर, वृक्ष तथा लताएँ, जड़ी-बूटियों तथा वार्षिक पौधों सहित, अपने-अपने ऋतु में पुष्पित तथा फलित होते हैं। (श्लोक ४१) उनसे भयभीत होकर नदियाँ बहती हैं और समुद्र कभी अपनी सीमा नहीं लाँघता; उनके भय से अग्नि जलती है, और अपने पर्वतों सहित पृथ्वी उसे धारण करने वाले जल में नहीं डूबती। (श्लोक ४२) उनके नियंत्रण के अधीन, वह विशाल आकाश जीवों को स्थान प्रदान करता है, और महत्त्व अपने अंकुर-सदृश रूप को इस विशाल ब्रह्मांड में विस्तारित करता है, जो अपने सात आवरणों से आच्छादित है। (श्लोक ४३) उनके भय से प्रकृति के तीन गुणों के अधिष्ठाता देवता — ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, जो चराचर संपूर्ण सृष्टि पर शासन करते हैं — समय-समय पर सृजन, पालन तथा संहार के अपने कर्तव्यों में संलग्न रहते हैं। (श्लोक ४४)

यह अंश प्रवचन के भीतर लगभग एक स्तोत्र का कार्य करता है: वायु, सूर्य, वर्षा, तारे, वनस्पति, नदियाँ, समुद्र, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, और यहाँ तक कि सृजन, पालन तथा संहार के तीनों महान देवता भी — ये सभी बिना किसी अपवाद के उसी अदृश्य शासक की आज्ञा का पालन करते हुए दिखाए गए हैं जो प्रत्येक मानव आत्मा की नियति को भी संचालित करता है। ब्रह्मांड में कुछ भी, चाहे कितना ही विशाल या कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, काल की पहुँच से बाहर नहीं है।



वायु, सूर्य, वर्षा, तारे, नदियाँ, अग्नि, और यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी अपने-अपने ब्रह्मांडीय पदों पर — सम्पूर्ण सृष्टि, कपिल प्रकट करते हैं, उसी सर्वशक्तिमान काल के श्रद्धामय भय में गतिमान है, जो भगवान का ही एक रूप, शासकों का शासक है (श्लोक ३६-४४)।

स्वयं मृत्यु को भी एक दिन मरना है

अध्याय एक ऐसे अकेले श्लोक के साथ समाप्त होता है जो काल पर सम्पूर्ण शिक्षा को अपने सबसे तीक्ष्ण बिंदु में समेट लेता है।

वह अविनाशी काल-पुरुष, जो अनादि होते हुए भी ब्रह्मांड के प्रथम निर्माता हैं, और जो अनंत होते हुए भी सांसारिक जगत के अंत को उत्पन्न करते हैं, एक व्यक्ति के माध्यम से दूसरे को — एक पिता के माध्यम से पुत्र को — अस्तित्व में लाकर सृष्टि का कार्य करते हैं, और इसी प्रकार स्वयं के माध्यम से मृत्यु के देवता यम को भी नष्ट करके ब्रह्मांड का विलय करते हैं। (श्लोक ४५)

इस श्लोक में एक शांत किन्तु सम्पूर्ण अंतिमता है। मानव जीवन जिस किसी भी भय को उचित रूप से धारण कर सकता है — मृत्यु के भय सहित, जो यम देवता में मूर्तिमान है — वह यहाँ अंततः किसी और भी महान शक्ति के अधीन प्रकट होता है। मृत्यु अंतिम शब्द नहीं है; काल अंतिम शब्द है, और काल भगवान से अन्य कुछ नहीं है। कपिल ने अभी-अभी सिखाया है कि भक्ति का अर्थ है प्रत्येक जीव में भगवान की समान उपस्थिति को पहचानना; यह अंतिम रहस्योद्घाटन अब उस चित्र के शेष अर्ध को पूर्ण करता है: वही भगवान जिन्हें कोमल, निष्काम प्रेम से पाया जा सकता है, वे ही उस समस्त संरचना का मूल आधार भी हैं जिससे जन्म, मृत्यु, तथा ब्रह्मांडीय व्यवस्था उत्पन्न होती है। प्रेम तथा विस्मय, इस अध्याय में, एक ही अखंड वास्तविकता की प्रतिक्रियाएँ के रूप में दर्शाए गए हैं।

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ।

जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥ ४५ ॥

so 'nanto 'nta-karaḥ kālo 'nādir ādi-kṛd avyayaḥ janam janena janayan mārayan mṛtyunāntakam

अर्थ: वह अनंत, अविनाशी काल, अनादि होते हुए भी समस्त आरंभों का निर्माता है, एक व्यक्ति के माध्यम से दूसरे व्यक्ति को उत्पन्न करता है, तथा मृत्यु के द्वारा स्वयं मृत्यु के मूर्त रूप को भी नष्ट कर देता है। (तृतीय स्कन्ध, अध्याय २९, श्लोक ४५)

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

१. भक्ति की श्रेणियाँ होती हैं, और अधिकांश पूजा एक मिश्रित, गुण-रंजित रूप में आरम्भ होती है। तामसिक भक्ति क्रोध तथा शत्रुता से प्रेरित है; राजसिक भक्ति पूजा के माध्यम से इन्द्रिय-वस्तुओं, यश तथा शक्ति की खोज करती है; सात्त्विक भक्ति पाप के निवारण की खोज करती है या कर्तव्य के रूप में पूजा करती है — इनमें से कोई भी अभी तक अंतिम लक्ष्य नहीं है (श्लोक ७-१०)।

२. वास्तविक भक्तियोग निष्काम है और प्रेममयी सेवा के विकल्प के रूप में मुक्ति को भी अस्वीकार कर देता है। भक्त का मन भगवान की ओर उतनी ही स्वाभाविक तथा अबाध रूप से प्रवाहित होता है जितनी गंगा समुद्र की ओर बहती है, बदले में कुछ भी नहीं चाहते हुए — यहाँ तक कि मुक्ति के पाँचों शास्त्रीय रूपों में से भी नहीं (श्लोक ११-१४)।

३. भक्ति एक सम्पूर्ण जीवन-शैली के माध्यम से निर्मित होती है, न कि किसी एकल तकनीक से। निष्काम कर्तव्य, अहिंसक पूजा, नैतिक संयम (यम तथा नियम), अध्ययन, जप, तथा साधुओं का संग धीरे-धीरे मन को शुद्ध करते हैं जब तक भगवान के प्रति प्रेम बिना किसी प्रयास के उत्पन्न न हो जाए (श्लोक १५-२०)।

४. समान दृष्टि के बिना पूजा वास्तव में भक्ति नहीं है। चाहे अनुष्ठान कितना ही महंगा या भव्य क्यों न हो, जो व्यक्ति अन्य जीवों के प्रति भेदभाव, द्वेष, या तिरस्कार रखता है उसकी पूजा को “उपहास” कहा गया है — क्योंकि जिस भगवान की मूर्ति में पूजा की जा रही है, वे ही अन्तर्यामी के रूप में अन्य सभी में भी समान रूप से उपस्थित हैं (श्लोक २१-२७)।

५. शक्ति या स्थिति नहीं, बल्कि आध्यात्मिक क्षमता ही किसी प्राणी की सच्ची श्रेणी है — और यह निष्काम भक्ति में परिणत होती है। जीवन का क्रमबद्ध सोपान (श्लोक २८-३४) सबसे शक्तिशाली या सबसे विद्वान की ओर नहीं, बल्कि उस भक्त की ओर उठता है जिसने समस्त कर्तृत्व को त्याग दिया है और अपने मन में समस्त प्राणियों को नमन करता है।

६. काल भगवान से पृथक् नहीं है — यह उन्हीं का एक नाम तथा रूप है। काल, जो विष्णु तथा विधाता से भी अभिन्न है, प्रत्येक जीव की नियति को संचालित करता है, और सम्पूर्ण दृश्य ब्रह्मांड — वायु, सूर्य, नदियाँ, अग्नि, यहाँ तक कि सृजन तथा संहार के महान देवता भी — उनके श्रद्धामय भय में कार्य करता है (श्लोक ३६-४४)।

७. स्वयं मृत्यु भी काल के अधीन है, और काल भगवान हैं। अध्याय का समापन श्लोक प्रकट करता है कि मृत्यु का मूर्त रूप, यम, स्वयं उसी अविनाशी काल-पुरुष द्वारा नष्ट किया जाएगा जिसने पहले ब्रह्मांड को अस्तित्व में लाया था (श्लोक ४५)।

एक भक्तिमय चिंतन

इस अध्याय में एक विशेष प्रकार की राहत उपलब्ध है उन सभी के लिए जिन्होंने कभी यह चिंता की हो कि उनकी अपनी भक्ति अपूर्ण, मिश्रित, या शुद्ध प्रेम से कम किसी भाव से प्रेरित प्रतीत होती है। कपिल अपनी शिक्षा का आरम्भ पहले ही दिन से गंगा के सहज प्रवाह की माँग करते हुए नहीं करते। वे तामसिक तथा राजसिक अवस्थाओं को बिना किसी लज्जा के, वास्तविक तथा पहचानने योग्य आरंभिक बिंदुओं के रूप में नाम देते हैं, उसी मार्ग पर जो धैर्यपूर्वक अभ्यास तथा शुद्धिकरण के माध्यम से निर्गुण प्रेम तक ले जाता है। और अध्याय का दूसरा अर्थ एक भिन्न, किन्तु समान रूप से आवश्यक प्रकार की सांत्वना प्रदान करता है: वही भगवान जो प्रत्येक जीव के हृदय में कोमलता के साथ पहचाने जाने का आग्रह करते हैं, वही वह काल भी हैं जो साम्राज्यों, शरीरों, तथा स्वयं मृत्यु के उत्थान-पतन को भी संचालित करता है। जो कुछ भी होता है — कोई हानि, कोई अंत, कोई भय — कुछ भी उनकी परवाह से बाहर नहीं है, क्योंकि कुछ भी उनसे बाहर नहीं है।

एक दैनिक भक्तिमय अभ्यास

आज, उस व्यक्ति को स्मरण करें जिसके प्रति आपको वास्तव में स्नेह अनुभव करना कठिन लगता है — जिसकी संगति खलती है, या जिसकी त्रुटियों पर ध्यान देना सरल है। किसी भावना को बलपूर्वक उत्पन्न किए बिना, बस इस अध्याय की शिक्षा को स्मरण करें: वही अन्तर्यामी जो आपके अपने हृदय में निवास करता है, बिना किसी अपवाद के, उनके हृदय में भी निवास करता है। उस व्यक्ति को मौन रूप से श्लोक २७ में वर्णित “दान तथा सम्मान” का एक छोटा-सा कार्य अर्पित करें — यहाँ तक कि उनके कल्याण की एक सच्ची, अनकही कामना जितना सरल कुछ भी। फिर कुछ क्षण शांत बैठें और कोमलता से दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,” और इस अभ्यास को ही, इस अध्याय के अपने शब्दों में, समस्त प्राणियों को समान देखने का एक कार्य बनने दें।

निष्कर्ष

तृतीय स्कन्ध का उनतीसवाँ प्रवचन, एक ही व्यापक चाप में, देवहूति द्वारा इसके आरम्भ में पूछे गए दोनों प्रश्नों का उत्तर देता है। अपने प्रथम अर्ध में, भगवान कपिल स्वयं भक्ति का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं — गुण-रंजित तीन अवस्थाओं को उस एकल निर्गुण भक्तियोग से अलग करते हुए, जो प्रत्येक हृदय में निवास करने वाले भगवान की ओर बिना किसी बुलावे और बिना किसी शर्त के प्रवाहित होता है, तथा सबसे कठोर शब्दों में यह चेतावनी देते हुए कि अनुष्ठानिक शुद्धता अन्य जीवों के प्रति तिरस्कार की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकती। अपने दूसरे अर्ध में, बिना किसी विराम के, वही भगवान काल, सर्वशक्तिमान समय के रूप में प्रकट होते हैं — वह अदृश्य शासक जिसके समक्ष वायु, सूर्य, नदियाँ, अग्नि, तथा यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अपने-अपने विहित कार्य करते हैं, और जो समय की पूर्णता में स्वयं मृत्यु को भी नष्ट कर देंगे। जो एक अंतरंग शिक्षा के रूप में आरम्भ होता है कि सही ढंग से कैसे प्रेम किया जाए, वह अंततः एक ब्रह्मांडीय रहस्योद्घाटन में परिणत होता है कि वह प्रेम आरम्भ से किसकी ओर निर्देशित रहा है।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- प्राथमिक संस्करण: गीता प्रेस, *श्रीमद्भागवत महापुराण* (अंग्रेजी, सम्पूर्ण), तृतीय स्कन्ध, प्रवचन २९, पृष्ठ २६७-२७१ (पृष्ठ २७० स्कैन किए गए स्रोत से अनुपस्थित; देखें सत्यापन एवं विसंगति टिप्पणियाँ)।
- शृंखला: श्रीमद्भागवत विज्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, वफादार पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यंतरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरंतर अनुवाद या टिप्पणी की प्रतिलिपि नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ संबद्धता या समर्थन का कोई संकेत नहीं दिया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-29-devotion-and-glory-of-time-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट